International Journal of Applied Research 2015; 1(7): 75-78

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 3.4
IJAR 2015; 1(7): 75-78
www.allresearchjournal.com
Received: 09-04-2015
Accepted: 16-05-2015

प्रीति
संस्कृत शोधछात्रा दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

Correspondence:
प्रवीण शर्मा
संस्कृत शोधछात्रा दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

नागेशभट्ट एवं कौण्डभट्ट का समासविवेचन

प्रीति

भूमिका

समसनं समासः, स च अनेकेषु पदेषु ऐक्यसम्पादनम्[1] अर्थात् जब एक से अधिक शब्द अपने जोड़ने वाले विभक्ति चिह्नों को छोड़कर एवं परस्पर मिलकर एक शब्द बन जाते हैं तो उस एक पद बनने की क्रिया को समास कहते हैं। समास शब्द 'सम्' उपसर्ग पूर्वक अस्[2] धातु से भाव में घञ्[3] प्रत्यय करने पर बनता है, जो संक्षिप्त अर्थ का बोधक है। जब दो या दो से अधिक शब्दों को इस प्रकार जोड़ दिया जाए कि उनके आकार में कमी आ जाए पर अर्थ में कोई अन्तर न आए तो ऐसी क्रिया को समास कहते हैं तथा इस क्रियाविशिष्ट पद को सामासिक पद कहते हैं। यथा– राज्ञः पुरुषः राजपुरुषः।
आचार्य पाणिनि के शब्दों में समास की तीन विशेषताएँ हैं 1. समर्थ पदविधिः 2. सह सुपा 3. कृत्तद्धितसमासाश्च। समास के तीन फल होते हैं–
1. एकपद बन जाना, 2. एकपद बन जाने से एकस्वर हो जाना 3. विभक्ति का लोप हो जाना।[4]

समास का वर्गीकरण

समस्त पदों के अर्थ के विचार से प्राचीन वैयाकरण समासों के चार मुख्य भेद मानते हैं–

1. पूर्वपदार्थप्रधानोऽव्ययीभावः।
2. उत्तरपदार्थप्रधानस्तत्पुरुषः।
3. अन्यपदार्थप्रधानो बहुव्रीहिः।
4. उभयपदार्थप्रधानो द्वन्द्वः।

महर्षि पाणिनि ने समास का वर्गीकरण चार मुख्य भागों में किया– अव्ययीभाव, तत्पुरुष, द्वन्द्व एवं बहुव्रीहि। इन्होंने तत्पुरुष का विभाजन विभक्ति तत्पुरुष, कर्मधारय एवं द्विगु के रूप में किया एवं द्वन्द्व के अन्तर्गत समर्थद्वन्द्व एवं इतरेतरयोगद्वन्द्व को रखा।
आचार्य भट्टोजि दीक्षित ने 'वैयाकरणसिद्धान्तकारिका' में समासों का वर्गीकरण इस प्रकार किया है–

सुपां सुपा तिङा नाम्ना धातुनाऽथ तिङां तिङा।
सुबन्तेनेति च ज्ञेयः समासः षड्विधो बुधैः।।[5]

1. सुबन्त का सुबन्त के साथ समास, यथा– राज्ञः पुरुष राजपुरुष।
2. सुबन्त का तिङन्त के साथ समास, यथा– पर्यभूषयत्, अनुव्यचलत्।
3. सुबन्त का नाम के साथ समास, यथा– कुम्भकारः।
4. सुबन्त का धातु के साथ समास, यथा– कटप्रूः, आयतस्तूः।
5. तिङन्त का तिङन्त के साथ समास, यथा– पिबतखादता, पचतभृज्जता।
6. तिङन्त का सुबन्त के साथ समास, यथा– जहिस्तम्बः।

इस प्रकार समास के वर्गीकरण में हमें विद्वानों के विचारों में पर्याप्त अन्तर दिखाई देता है। एक ओर जहां पाणिनि आदि प्राचीन वैयाकरणों को समास के 4 मुख्य भेद अभीष्ट प्रतीत होते हैं वहीं भट्टोजि दीक्षित एवं कौण्डभट्ट इसे षड्विध स्वीकार करते हैं। लेकिन नागेश भट्ट के ग्रन्थ में समास का ऐसा स्पष्ट विभाजन प्राप्त नहीं होता है।
समासशक्ति व्याकरणदर्शन का ऐसा विषय है जिस पर अनेक विद्वानों ने अपनी लेखनी चलाई है। कौण्डभट्ट ने 'वैयाकरणभूषणसार' में 'समासशक्तिनिर्णय' नाम से एक अलग अध्याय में इस विषय के प्रायः सभी महत्वपूर्ण पक्षों पर प्रकाश डाला है। नागेशभट्ट ने अपने ग्रन्थ 'वैयाकरणसिद्धान्तपरमलघुमञ्जूषा' में 'समासादिवृत्यर्थ' नामक अध्याय में इस विषय का साङ्गोपाङ्ग

समास एक वृत्ति है

वृत्ति शब्द संस्कृत व्याकरण का एक पारिभाषिक शब्द है। वृत्ति की परिभाषा करते हुए पतञ्जलि ने महाभाष्य में कहा है–

परार्थाभिधानं वृत्तिः[6] विशिष्टार्थ का कथन ही वृत्ति है। वृत्ति के कई रूप होते हैं। कुछ क्रियाओं में होती हैं, जैसे– सन्नन्त, यङन्त आदि। कुछ का सम्बन्ध नाम शब्दों से होता है, जैसे– एकशेष और तद्धित। समास एक ऐसी वृत्ति है जिसका सम्बन्ध 'नाम शब्द' और 'क्रिया शब्द' दोनों से होता है। दूसरे शब्दों में समास में जो शब्द परस्पर मिलकर एकरूप धारण करते हैं वे केवल नाम शब्द भी हो सकते हैं, नाम और क्रिया भी अथवा केवल क्रिया भी। नागेश भट्ट ने 'वैयाकरणपरमलघुमञ्जूषा' में पांच प्रकार की वृत्तियां मानते हुए कहा है कि इन समास आदि पांचों वृत्तियों में अवयवविशिष्ट समुदाय में अर्थाभिधान की शक्ति होती है, अवयवों में अपने–अपने अर्थों को अलग–अलग रूप से कहने की शक्ति नहीं होती। अवयवों में अपने–अपने अर्थों को प्रकट करने की शक्ति न रहने के कारण ही रथन्तर, सप्तपर्णः तथा सुश्रूषा इत्यादि वृत्तिविशिष्ट शब्दों में उनके अवयवों के अर्थ का ज्ञान नहीं होता।[7] किसी भी वृत्ति में अनेक शब्दों का संयोग होता है और वे शब्द मिलकर किसी नवीन अर्थ का अभिधान करते हैं। नवीन अर्थ का अभिधान दो प्रकार से हो सकता है– अपने अर्थ को पूरी तरह छोड़कर अथवा अपने अर्थ के साथ। इन दोनों स्थितियों के लिए दो पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया जाता है– जहत्स्वार्था एवं अजहत्स्वार्था।

जहत्स्वार्था– नागेशभट्ट ने इसकी परिभाषा देते हुए कहा है– अवयवभूत पदों के अर्थों की अपेक्षा न करते हुए पूरे शब्द समुदाय के द्वारा एक अभिन्न अर्थ का बोध कराना जहत्स्वार्थता है। जैसे– एक विशेष प्रकार के सामगान के लिए रथन्तर शब्द का प्रयोग।[8]

अजहत्स्वार्था– नागेशभट्ट ने इसकी परिभाषा इस प्रकार दी है– अवयवार्थ से समन्वित समुदायार्थ का बोध कराना अजहत्स्वार्थता है। जैसे– राजपुरुषः।[9]

भट्टोजिदीक्षित की कारिका को उद्धृत करते हुए जहत्स्वार्था एवं अहजत्स्वार्था के भेदों का सोदाहरण वर्णन कौण्डभट्ट ने भी किया है। मूल कारिका इस प्रकार है–

जहत्स्वार्थाजहत्स्वार्थे द्वे वृत्ती ते पुनस्त्रिधा।
भेदः संसर्ग उभयं वेति वाच्यव्यवस्थितेः।।[10]

अर्थात् जहत्स्वार्था और अजहत्स्वार्था ये दो वृत्तियाँ हैं। ये दोनों वृत्तियाँ पुनः तीन प्रकार की हैं– भेद, संसर्ग और उभय। इस प्रकार वाच्यार्थ के भेद से उक्त दोनों वृत्तियों के तीन–तीन भेद होते हैं। इसकी व्याख्या करते हुए कौण्डभट्ट लिखते हैं–

जहति (त्यजन्ति) स्वानि (पदानि) अर्थं यस्यां वृत्तौ सा जहत्स्वार्था[11]
अर्थात् जिस वृत्ति में पद अपने अर्थ का परित्याग करता है वह जहत्स्वार्था वृत्ति है।

अजहति (न त्यजन्ति) स्वानि (पदानि) अर्थ यस्यां वृत्तौ सा अजहत्स्वार्था[12]
अर्थात् जहाँ पद अपने अर्थों का परित्याग नहीं करते उसको अजहत्स्वार्था वृत्ति कहते हैं। वस्तुतः जहत्स्वार्थत्व लोकप्रयोग में प्रचलित किसी एक अर्थ की रूढ़ि का उदाहरण है। यथा– सप्तपर्णः। बहुव्रीहि समास जहत्स्वार्था वृत्ति का उदाहरण है क्योंकि अवयवों के अर्थ से निरपेक्ष बहुव्रीहिसमासयुक्त शब्द अर्थविशेष का संकेत करते हैं किन्तु सामान्य रूप से समास अजहत्स्वार्थ होते हैं क्योंकि इनके समुदायार्थ इनके अवयवार्थों से निरपेक्ष नहीं होते। प्राचीन वैयाकरणों के अनुसार वृत्तियाँ 5 प्रकार की हैं– कृदन्त, तद्धितान्त, समास, एकशेष तथा सनाद्यन्त।[13] परन्तु नवीन वैयाकरणों के विचारानुसार केवल चार प्रकार की ही वृत्तियाँ हैं। एकशेष के प्रयोगों में ये विद्वान् वृत्ति नहीं मानते क्योंकि यहाँ अन्य शब्द के अर्थ से अन्वित अपने अर्थ की उपस्थापकता नहीं पाई जाती। नागेश भट्ट ने अपने ग्रन्थ वैयाकरणसिद्धान्तलघुमञ्जूषा में 4 प्रकार की वृत्तियों को स्वीकार किया है–

तत्र वृत्तिश्चतुर्धा समासतद्धितकृत्सनाद्यन्तधातुभेदात[14]

लघुशब्देन्दुशेखर में भी उन्होंने कहा है–

वस्तुत एकशेषे परार्थान्वितस्वार्थस्यैवोपस्थापकत्वाभावत् वृत्तित्वं न मानम्

नागेश के मत में एक ही समूह के एक से अधिक व्यक्ति विशेष की ओर एक ही शब्द के द्वारा संकेत करना परार्थ नहीं कहा जा सकता। इनके मत में 'पितरौ' के द्वारा जो अर्थ सामने आता है उसे परार्थ नहीं कहा जा सकता। यह शब्द अपने अर्थ के अतिरिक्त किसी भी अन्य अर्थ को नहीं बतलाता बल्कि उनके अनुसार यहाँ एक प्रकार का अध्यारोप कार्य करता है अर्थात् पितृ शब्द के द्वारा मातृ शब्द के अर्थ को भी बताया जाना माता पर पितृत्व का अध्यारोपण है। अतएव यहाँ वृत्ति मानने की कोई आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार नागेशभट्ट ने एकशेष को वृत्ति नहीं माना है। यद्यपि इनके ग्रन्थ वैयाकरणसिद्धान्तपरमलघुम×जूषा में 5 प्रकार की वृत्तियों का वर्णन प्राप्त होता है। समर्थः पदविधिः' सूत्र में महर्षि पाणिनि ने कहा है कि दोनों पदों के समर्थ होने पर ही समास होगा अन्यथा नहीं। यह सामर्थ्य दो प्रकार है– एकार्थीभाव सामर्थ्य एवं व्यपेक्षा सामर्थ्य।

एकार्थीभाव सामर्थ्य– एकार्थीभाव सामर्थ्य समास आदि 5 वृत्तियों में माना जाता है क्योंकि इन सब में समुदाय में ही अभीष्ट अर्थ के प्रकाशन की क्षमता होती है, अवयव में नहीं। पाणिनि के 'समर्थः पदविधिः' में विद्यमान समर्थ पद का अभिप्राय वैयाकरणों की दृष्टि में एकार्थीभाव रूप सामर्थ्य से ही है। एकार्थीभाव सामर्थ्य का अभिप्राय है– पृथक्–पृथक् पदों का अपनी विभिन्नार्थकता को छोड़कर एक अर्थ वाला हो जाना, पूरे समुदाय के द्वारा एक ही विशिष्ट अर्थ का कहा जाना। इस दृष्टि से उपर्युक्त सूत्र में समर्थ शब्द का अभिप्राय है– संगतार्थ अथवा संसृष्टार्थ।[15]

व्यपेक्षा सामर्थ्य– एकार्थीभाव सामर्थ्य के विपरीत नैयायिक तथा मीमांसक विद्वान् व्यपेक्षा नामक सामर्थ्य मानते हैं। व्यपेक्षा पक्ष में यह माना जाता है कि जिस प्रकार वाक्य में पद अलग–अलग रहकर अपने–अपने अर्थों को प्रकट करते हैं और तत्पश्चात् उन–उन अर्थों का आकांक्षा आदि के कारण परस्पर अन्वय होता है, उसी प्रकार समास आदि वृत्तियों में विद्यमान अवयवभूत पद भी पहले अपने–अपने अर्थों को प्रकट करते हैं। तत्पश्चात् उन–उन अर्थों का आकांक्षा आदि के कारण परस्पर अन्वय होता है। वस्तुतः ये विद्वान् शब्द को उसी रूप में नित्य नहीं मानते जिस रूप में वैयाकरण मानते हैं। इसलिए 'राजपुरुष' जैसे शब्दों को स्वरूपतः नित्य न मानकर वे यह मानते हैं कि 'राज्ञः पुरुषः' के स्थान पर ही राजपुरुषः जैसे समासयुक्त प्रयोग होते हैं। अतः ये व्यपेक्षावादी विद्वान् समास आदि के प्रयोगों में समुदाय की दृष्टि से विशिष्ट शक्ति की कल्पना न करके यह मानते हैं कि अवयवों की अपनी शक्ति से ही विशिष्ट अर्थ का बोध हो जाता है। इस व्यपेक्षा पक्ष में 'समर्थः पदविधिः' के समर्थ शब्द का अभिप्राय माना जाता है– सम्बद्धार्थ।[16] व्यपेक्षावादियों के मतों को जिस रूप में नागेशभट्ट ने अपने ग्रन्थ में प्रस्तुत किया है लगभग उन्हीं शब्दावलियों के साथ ठीक इसी प्रकार का वर्णन कौण्डभट्ट के वैयाकरणभूषणसार में भी उपलब्ध होता है। इस प्रसंग में कौण्डभट्ट व नागेश दोनों ही एक कारिका उद्धृत करते हैं, जो इस प्रकार है–

समासे खलु भिन्नैव शक्तिः पङ्कजशब्दवत्।।
बहूनां वृत्तिधर्माणां वचनैरेव साधने।
स्यान्महद् गौरवं तस्मादेकार्थीभाव आश्रितः।।[17]

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि इस एकार्थीभाव सामर्थ्य के सिद्धान्त में किसी प्रकार की कोई अनुपपत्ति नहीं है। अतः वैयाकरणों के मत में इस पक्ष को ही स्वीकार करना चाहिए अन्यों को नहीं।

नैयायिकों तथा मीमांसकों के मत

नैयायिकों तथा मीमांसकों के मत में समास आदि वृत्तियों के अवयवों की अर्थवाचिका शक्ति से अतिरिक्त कोई विशेष शक्ति नहीं होती। समासयुक्त पदों से जो विशिष्ट अर्थ की प्रतीति होती है उसकी उपपत्ति व्यपेक्षावादियों के मत में लक्षणा वृत्ति की सहायता लेकर कर ली जाती है। यथा– 'राजपुरुषः' इस समस्त प्रयोग में राजन् शब्द का अर्थ लक्षणा के द्वारा राजा का सम्बन्धी मान लिया जाता है क्योंकि राजन् शब्द के पदार्थ 'राजा का सम्बन्धी' में पुरुष पद के अर्थ का अभेद रूप से सम्बन्ध कर दिया जाता है। इस प्रकार बिना समास में विशिष्ट शक्ति माने ही अवयवार्थों का परस्पर सम्बन्ध कर देने से 'राजा का सम्बन्धी पुरुष' इस अभीष्ट अर्थ का बोध हो जाता है।

नैयायिकों तथा मीमांसकों के मत का खण्डन एवं वैयाकरणों का मत

नैयायिकों तथा मीमांसकों के व्यपेक्षा–पक्ष का खण्डन करते हुए वैयाकरण कहते हैं कि यदि विशिष्ट समुदाय में अर्थाभिधान की शक्ति नहीं मानी गई तो राजपुरुषः आदि प्रयोगों में राज तथा पुरुष का समुदाय अर्थवान् नहीं होगा। अर्थवत्ता के अभाव में इस प्रकार के समुदायों की प्रातिपदिक संज्ञा नहीं होगी। प्रातिपदिक संज्ञा विधायक सूत्र है– 'अर्थवद्धातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्'[18] अर्थात् धातु तथा प्रत्यय से अतिरिक्त जो अर्थवान् शब्द उनकी प्रातिपदिक संज्ञा होती है। यहां अर्थवत् शब्द में अर्थ शब्द के साथ प्रशंसा अर्थ में मतुप् प्रत्यय प्रयुक्त है। शब्द की प्रशंसा इस बात में है कि वह अभिधा आदि वृत्तियों के द्वारा किसी अर्थ का बोधक हो। इस प्रकार अर्थवत् इस विशेषण का अभिप्राय यह हुआ कि जो वृत्ति के द्वारा अर्थ का जनक हो ऐसा विशेष्यभूत शब्दस्वरूप। इसलिए यदि राजपुरुष आदि पूरे समुदाय को विशिष्ट अर्थ का वाचक न माना गया तो वह समुदायभूत शब्दस्वरूप अर्थवान् नहीं होगा। अर्थवत्ता के अभाव में उसकी प्रातिपदिक संज्ञा भी नहीं होगी तथा प्रातिपदिक संज्ञा के आधार पर होने वाली सु आदि विभक्तियाँ इन शब्दों के साथ युक्त नहीं हो सकेंगी। इस प्रकार अनन्त शब्द अपद अथवा असाधु हो जाएंगे। जिस प्रकार 'दश दाडिमानि' इत्यादि समुदाय की अर्थवत्ता के अभाव में प्रातिपदिक संज्ञा नहीं होती इसी प्रकार यदि व्यपेक्षावादियों के अनुसार अवयव विशिष्ट समुदाय को अर्थवान् नहीं माना गया तो राजपुरुष इस समुदाय की भी प्रातिपदिक संज्ञा नहीं होगी। इस स्थल पर यह कहा जा सकता है कि व्यपेक्षावाद के अनुसार अर्थवत्ता न होने के कारण राजपुरुषः इत्यादि समासयुक्त समुदायों की **'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्'** सूत्र से भले ही प्रातिपदिक संज्ञा न हो **'कृत्तद्धितसमासाश्च'** से इन पदों की प्रातिपदिक संज्ञा हो जाएगी। लेकिन यह बात मान्य नहीं होगी क्योंकि पतञ्जलि ने कृत्तद्धितसमासाश्च सूत्र के समास पद को नियमार्थक माना है। इस नियमार्थकता का अभिप्राय यह है कि यदि किसी अर्थवान् समुदाय की प्रातिपदिक संज्ञा हो तो केवल समास वाले पदों की ही हो। इसी के कारण **राज्ञः पुरुषः देवदत्तः** इत्यादि वाक्यों की प्रातिपदिक संज्ञा नहीं होती है। यहाँ व्यपेक्षावादी कहते हैं कि सामुदायिक अर्थवत्ता माने बिना ही लाक्षणिक अर्थवत्ता के आधार पर भी तो समस्त शब्दों की प्रातिपदिक संज्ञा हो सकती है। इस का उत्तर यह दिया जाता है कि यदि समास युक्त समुदाय का अपना कोई विशिष्ट अर्थ है ही नहीं तो फिर वहाँ लक्षणा वृत्ति उपस्थित ही कैसे हो सकती है। लक्षणा की परिभाषा स्वयं नैयायिक यह मानते हैं कि शक्य अर्थात् अभिधाशक्ति से प्रकट होने वाले अर्थ का सम्बन्ध ही लक्षणा है। यहाँ उस विशिष्ट शक्य अर्थ को नैयायिक मानते ही नहीं। इसलिए लक्षणा वृत्ति के उपस्थित न होने पर लक्ष्यार्थ के अभाव में समस्त शब्द की प्रातिपदिक संज्ञा तथा तदाश्रित सु आदि विभक्तियाँ उत्पन्न नहीं होगी। इस रूप में सारे समासयुक्त पद अपद अर्थात् असाधु हो जाएंगे तथा अपद होने के कारण **'अपदं न प्रयुञ्जीत'** इस नियमानुसार इस प्रकार के प्रयोगों का लोप हो जाएगा। व्यपेक्षावाद के समर्थन में यह कहा जाता है कि राजपुरुषः जैसे प्रयोगों में राजन् शब्द का लक्षणा वृत्ति के आधार पर राजा का सम्बन्धी अर्थ होगा। इसलिए राजन् शब्द के अर्थरूप इस पदार्थ के एकदेश राजा के साथ ऋद्धस्य जैसे विशेषण नहीं लग सकेंगे क्योंकि **'पदार्थः पदार्थेन अन्वेति न तु तदेकदेशेन'** यह सर्वसम्मत परिभाषा है। एकार्थीभाववादी इसका उत्तर देते हैं कि एकार्थीभाव सामर्थ्य में तो राजन् जैसे अवयवभूत पदों का कोई अर्थ ही नहीं है। वे तो राजपुरुष इस विशिष्ट समुदाय के अर्थ में एकीभूत हो गए हैं। इसलिए अनर्थक होने के कारण, बिना किसी नियम का आश्रय लिए स्वतः ही ऋद्धस्य जैसे विशेषण राजन् जैसे अवयवभूत पदों के साथ नहीं लगाए जा सकते। व्यपेक्षावादियों का विचार है कि **'प्रत्ययाः सन्निहितपदार्थगत– स्वार्थबोधकाः भवन्ति'** इस न्याय की अनुकूलता इसी बात में है कि प्राप्तोदकः जैसे प्रयोगों के उत्तरपद में लक्षणा मानी जाए। एकार्थीभाववादियों के मत में न्याय का वस्तुतः वह रूप नहीं है जो व्यपेक्षावादियों ने प्रस्तुत किया है क्योंकि यदि नियम का वही रूप माना जाए तो उसमें व्यभिचार दोष आता है। उपकुम्भम्, अर्धपिप्पली इत्यादि समासयुक्त प्रयोगों में विग्रह वाक्य है कुम्भस्य समीपम्, पिप्पल्याः अर्धम्। यहाँ षष्ठी विभक्ति के अर्थ 'सम्बन्ध' का अन्वय समस्त प्रयोग के पूर्वपद में विद्यमान उप तथा अर्ध के अर्थ में होता है जो अव्यहित पूर्व में न होकर क्रमशः कुम्भ तथा पिप्पली से व्यवहित है। इसलिए वैयाकरण इस न्याय का वास्तविक रूप यह मानते हैं कि **'प्रत्ययाः प्रकृत्यार्थान्वितस्वार्थबोधकाः भवन्ति'** न्याय के इस स्वरूप में व्यभिचार दोष नहीं आता क्योंकि यहां प्रत्यय अर्थात् द्वितीया विभक्ति अवयव विशिष्ट पूरे समुदाय से आती है। न्याय के इस दोषरहित रूप को व्यपेक्षावादी आचार्य नहीं मान सकते क्योंकि उनके मत में अवयव विशिष्ट पूरे समुदाय से प्रत्यय का विधान न होने से पूरा समुदाय प्रत्यय की प्रकृति नहीं बन पाता यदि वह किसी प्रकार प्रकृति बन भी जाए तो भी उसका कोई विशिष्ट अर्थ नहीं होगा। इसलिए उसमें विभक्त्यर्थ के अन्वय की बात हीं नहीं उठती। नैयायिकों आदि व्यपेक्षावादियों के मतों का खण्डन करने के क्रम में वैयाकरण व्यपेक्षा सामर्थ्य में उपस्थित होने वाले दोषों को ही एकार्थीभाव सामर्थ्य के सिद्धान्त का साधक बताने का प्रयास करते हैं। समुदाय में शक्ति मानना ही एकार्थीभाव सामर्थ्य है। नागेशभट्ट ने परमलघुमञ्जूषा में जहत्स्वार्था और अजहत्स्वार्था इन दोनों वृत्तियों की चर्चा जिस रूप में की है उससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि वे जहत्स्वार्था को ही एकार्थीभाव मान रहे हैं तथा अजहत्स्वार्था को व्यपेक्षा। वैयाकरणभूषणसार के प्रणेता कौण्डभट्ट ने भी इस प्रसंग में यही माना है कि जहत्स्वार्था ही एकार्थीभाव तथा अजहत्स्वार्था ही व्यपेक्षा है। कौण्डभट्ट के अनुसार 'समर्थः पदविधिः' सूत्र के भाष्य में आचार्य पतञ्जलि के द्वारा अनेक मतों के प्रस्तुत किए जाने पर भी जहत्स्वार्था तथा अजहत्स्वार्था पक्षों का ही पर्यवसान क्रमशः एकार्थीभाव तथा व्यपेक्षा पक्षों के रूप में होता है। परन्तु वास्तविकता यह है कि सामर्थ्य के दो भेद हैं– एकार्थी भाव तथा व्यपेक्षा। पुनः एकार्थीभाव के दो भेद हैं– जहत्स्वार्था तथा अजहत्स्वार्था। इसी कारण 'लघुमञ्जूषा' में नागेश भट्ट ने 'वैयाकरणभूषण' का नाम लेकर उसके प्रणेता कौण्डभट्ट के इस कथन का कि जहत्स्वार्था एकार्थीभाव है तथा अजहत्स्वार्था व्यपेक्षा, खण्डन किया है–

'एतेन जहत्स्वार्थतैव एकार्थीभावो भूषणोक्तम् अपास्तम्,
अनेन हि एकार्थीभावम् उपक्रम्योक्तेस्तत्रैव पक्षद्वयम् इति लभ्यते।'

इस प्रकार कौण्डभट्ट एवं नागेश भट्ट के समासशक्तिविषयक विचारों का अध्ययन करने से यह बात बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है कि यद्यपि विभिन्न विषयों पर इन मनीषियों के मत में एकरुपता नहीं पाई जाती लेकिन एक तथ्य पर वे एकमत दिखाई देते हैं कि समास आदि पांचों ही वृत्तियों में अवयवविशिष्ट समुदाय में अर्थाभिधान की शक्ति होती है, अवयवों की अपने–अपने अर्थों को अलग–अलग रूप से कहने की शक्ति नहीं होती। अवयवों में अपने–अपने अर्थों को प्रकट करने की शक्ति न रहने के कारण ही 'रथन्तरम्', 'सप्तपर्णः' तथा 'शुश्रूषा' इत्यादि वृत्तिविशिष्ट शब्दों में उनके अवयवों के अर्थ का ज्ञान नहीं होता।

संदर्भ

1. प्रक्रियाकौमुदी
2. धतुपाठ, दिवादिगण
3. भावे। अष्टाध्यायी, 3/3/18
4. स्मासस्य त्रीणि प्रयोजनानि ऐकपद्यमैकस्वर्यमेकविभक्तित्वं□च। रूपावतार, समासावतार, पृष्ठ 166
5. वैयाकरणभूषणसार, समासशक्तिनिर्णय, कारिका–28
6. महाभाष्य, 2/1/1
7. समासादि पञ्चसु विशिष्ट एव शक्तिर्न तु अवयवे। रथन्तरम्, सप्तपर्णः, शुश्रूषा इत्यादौ अवयवार्थानुभवाभावात्। वैयाकरणसिद्धान्तपरमलघुमञ्जूषा, समासादिवृत्यर्थः, पृष्ठ 404
8. अवयवार्थ निरपेक्षत्वे सति समुदायार्थबोधिकात्वं जहत्स्वार्थत्वम्। वही
9. अवयवार्थसंवलितसमुदायार्थबोधिकात्वम् अजहत्स्वार्थत्वम्। वही
10. वैयाकरणभूषणसार, कारिका 30–31, पृष्ठ 230
11. वही
12. वही, पृष्ठ 232
13. कृत्तद्धितसमासैकशेषसनाद्यन्तधतुरुपाः पञ्चवृतयः। वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी, सर्वशेषसमासप्रकरण
14. लघुमञ्जूषा, पृष्ठ 142।
15. तद् यदा व्यपेक्षा सामर्थ्यं तदा एवं विग्रहः करिष्यते सम्प्रेक्षितार्थः समर्थः, सम्बद्धार्थः समर्थः इति। महाभाष्य 2/1/1
16. वैयाकरणसिद्धान्तपरमलघुमञ्जूषा, समासादिवृत्यर्थ, पृष्ठ 43।
17. [1]वैयाकरणभूषणसार, समासशक्तिनिर्णय, कारिका 31–32, पृष्ठ 234
18. अष्टाध्यायी, 1/2/45